निजी विश्वविद्यालय : कहां खड़े हैं भारत के बुद्धिजीवी?

प्रेम सिंह

1

हैदराबाद में रहने वाले वरिष्ठ समाजवादी साथी रावेला सोमैय्या ने करीब दो महीने पहले एक विडियो भेजा था. विडियो खोला तो देखा उसमें रामचंद्र गुहा का भाषण था, जो अशोका यूनिवर्सिटी, सोनीपत, हरियाणा में दिया गया था. मैंने वह भाषण सुने बगैर विडियो बंद कर दिया. पिछले साल यह विश्वविद्यालय प्रोफेसर प्रतापभानु मेहता की सेवाएं एकाएक समाप्त कर देने के लिए चर्चा में आया था. वे इस विश्वविद्यालय के 2017 से 2019 के बीच दो वर्षों के लिए कुलपति (वाईस चांसलर) रह चुके थे. उस पद से उन्होंने अकादमिक कारणों का हवाला देकर त्यागपत्र दिया था. हालांकि, राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर के रूप में वे विश्वविद्यालय में अध्यापन-कार्य करते रहे. मार्च 2021 में उन्होंने शिक्षक के रूप में भी विश्वविद्यालय से त्यागपत्र दे दिया. विश्वविद्यालय के न्यासियों ने उन्हें विश्वविद्यालय छोड़ देने का संकेत दिया था. बताया गया कि न्यासियों, जिन्हें विश्वविद्यालय के लिए और सुविधाएं चाहिए थीं, के ऊपर उन्हें हटाने के लिए सरकार का दबाव था.

प्रोफेसर मेहता को हटाए जाने की घटना की मीडिया में काफी चर्चा हुई थी. अंग्रेजी दैनिक 'इंडियन एक्सप्रेस' ने संपादकीय (एडिट) लिख कर मेहता के हटाए जाने पर विरोध व्यक्त किया था. अखबार को आश्चर्य हुआ कि अब निजी विश्वविद्यालयों में भी विचारों की स्वतंत्रता पर हमला हो रहा है! मेहता लम्बे समय से 'इंडियन एक्सप्रेस' के कंट्रीब्युटिंग एडिटर हैं. इस नाते अखबार का उन्हें हटाए जाने का विरोध वाजिब था. लेकिन अख़बार द्वारा इस मामले में 'विचारों की स्वतंत्रता' का सवाल उठाना नादानी ही कहा जाएगा. कहने की जरूरत नहीं कि आजकल विचारों की स्वतंत्रता का अर्थ प्राय: नवउदारवादी विचारों की स्वतंत्रता से होता है. 'इंडियन एक्सप्रेस' नवउदारवादी नीतियों का प्रबल पक्षधर अखबार है; और मेहता भी शुरू से ही नवउदारवाद के प्रबल समर्थक रहे हैं. फिर मेहता के कौन से विचारों की स्वतंत्रता का हनन हुआ था, संपादकीय से यह स्पष्ट नहीं हो पाया. शायद मेहता के लेखों में साम्प्रदायिकता विरोध के स्वर से सरकार को दिक्कत हुई हो सकती है. लेकिन न 'इंडियन एक्सप्रेस', न प्रोफेसर मेहता यह मानने के लिए तैयार होंगे कि सांप्रदायिक फासीवाद, जिसका दोनों विरोध करते हैं, नवउदारवाद से अभिन्न है.

बहरहाल, यह टिप्पणी नवउदारवाद और सांप्रदायिक फासीवाद के संबंध को लेकर नहीं लिखी गई है. टिप्पणी में यह स्पष्ट करने की कोशिश है कि देश में निजी विश्वविद्यालयों/शिक्षा-संस्थानों का जाल बिछाने में शिक्षा के सौदागरों के साथ राज्य यानि राजनीतिक सत्ता, बिल्डर्स/डवलपर्स और न्यायपालिका के साथ बुद्धिजीवियों की एकजुट भूमिका है. यह अकेले राजनीतिक सत्ता (पॉलिटिकल पॉवर) और निजी पूंजी (प्राइवेट कैपिटल) के गठजोड़ का मामला नहीं है, जैसा कि आमतौर पर मान लिया जाता है. राजनीतिक वर्ग (पॉलिटिकल क्लास) निजी पूंजी के खिलाड़ियों को औने-पौने दामों पर ज़मीन, ऋण और प्रशासनिक सहूलियतें उपलब्ध कराता है. लेकिन न्यायपालिका और बुद्धिजीवी इस पूरी प्रक्रिया को 'वैधता' प्रदान करते हैं. नब्बे के दशक से बड़े पैमाने पर किसानों-आदिवासियों के विस्थापन और आत्महत्याओं, गांवों-कस्बों की डूब, जंगलों/पहाड़ों के विनाश के बावजूद देश की न्यायपालिका प्राय: कल्पित स्मार्ट शहरीकरण (स्पेकुलेटिव स्मार्ट अर्बनाइजेशन), वैश्वीकरण (ग्लोबलाईजेशन), विश्व-श्रेणी की शिक्षा (वर्ल्ड क्लास एजुकेशन), विश्व स्तरीय मानक (ग्लोबल स्टैण्डर्ड) आदि की मरीचिका के पीछे भागती नज़र आती है. वैसी ही स्थिति अधिकांश बुद्धिजीवियों की है.

देश के नामचीन विद्वान, राज्य और केंद्रीय विश्वविद्यालयों के पूर्व और वर्तमान कुलपति/प्रोफेसर, जिन्होंने अपनी शिक्षा सार्वजनिक क्षेत्र के विश्वविद्यालयों में पाई है और वहीं अपना पूरा कैरियर बिताया है, निजी विश्वविद्यालयों में जाने और सेवा देने को आतुर रहते हैं. महामहिम एवं माननीय विभूतियां (राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्यपाल, मंत्री) भी इन विश्वविद्यालयों के कार्यक्रमों में सहर्ष हिस्सा लेती हैं. कहने की जरूरत नहीं कि नेताओं, शिक्षा के सौदागरों, न्यायपालिका और बुद्धिजीवियों के बीच का यह गठजोड़ नवउदारवाद के तहत चल रहे बेलगाम निजीकरण की कसौटी पर भले खरा हो, संविधान की कसौटी पर अवैध है.

भारत में इस समय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) से मान्यता प्राप्त करीब सवा चार सौ निजी विश्वविद्यालय हैं. इसके साथ देश में विदेशी विश्वविद्यालयों के तंत्र (नेटवर्क) को अभी पूर्ण क्षमता में फैलना है. निजी क्षेत्र में पसरा शिक्षा का बाज़ार पहले मेडिकल, मैनेजमेंट, इंजीनियरी, आईटी, वाणिज्य, फैशन, मीडिया जैसे बाजारोन्मुख विषयों तक सीमित था. जैसे-जैसे नवउदारवाद के तहत निजीकरण की प्रक्रिया तेज़ होती गई है, कानून समेत समाजशास्त्र और मानविकी के कई विषय भी इन विश्वविद्यालयों में पढ़ाए जाने लगे हैं. नए भारत में शिक्षा के ऐसे ग्राहक अब काफी संख्या में हैं, जो मात्र बीए की पढ़ाई का 30-35 लाख रुपया प्रति वर्ष दे सकते हैं. यह भारी-भरकम फीस वसूलने वाले विश्वविद्यालयों का दावा प्राय: 'नोन-प्रॉफिट संस्थान' होने का होता है. प्राकृतिक विज्ञानों को अभी शिक्षा के इस बाज़ार में प्राय: शामिल नहीं किया गया है. इसका कारण है सार्वजनिक क्षेत्र के विश्वविद्यालयों में इन विषयों की सीटें खाली

रह जाती हैं. ज्यादा गहरा कारण यह है कि 'नए भारत' की रुची केवल 'डिजिटल' में है; विज्ञान के दर्शन से उसने पल्ला झाड़ लिया है.

2

आइए अशोका विश्वविद्यालय का ही उदाहरण लेते हैं. यह विश्वविद्यालय 'इलीट एजुकेशन हब' कहे जाने वाले राजीव गांधी एजुकेशन सिटी (आरजीइसी) में स्थित है. हरियाणा सरकार के राजीव गांधी एजुकेशन सिटी के निर्माण के फैसले और प्रक्रिया के बारे में कुछ जानकारी मैंने इसकी स्थापना के समय दी थी. राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर) में राष्ट्रीय राजमार्ग एक पर स्थित और केएमपी (कुंडली-मानेसर-पलवल वेस्टर्न पेरिफेरल एक्सप्रेसवे) एवं केजीपी (कुंडली-गाज़ियाबाद-पलवल एक्सप्रेसवे) से जुड़े इस 'ड्रीम प्रोजेक्ट' के लिए 5000 एकड़ ज़मीन का अधिग्रहण किया जाना था. परिजोजना के पहले चरण के लिए ज़मीन अधिग्रहण का नोटिस भूमि अधिग्रहण कानून 1894 के तहत 17 नवंबर 2005 को निकाला गया था. 9 गांवों - जाखौली, सेवली, पतला, बडखालसा, फिरोजपुर खादर, असावरपुर, खेवड़ा, बहालगढ़, बाढमलिक - की 2006 एकड़ अत्यंत उपजाऊ जमीन का जन-उद्देश्य (पब्लिक परपज) के नाम पर एजुकेशन सिटी के लिए अधिग्रहण किया गया. 2012 में एजुकेशन सिटी की आधारशिला रखी गई. हरियाणा सरकार ने राजीव गांधी एजुकेशन सिटी के लिए ज़मीन का अधिग्रहण निजी विश्वविद्यालयों, डवलपर्स और कारपोरेशंस को प्लाट काट कर बेचने के उद्देश्य से किया था. उस समय ज़मीन का बाज़ार-भाव 80 लाख रुपये से लेकर एक करोड़ रुपये प्रति एकड़ था. जबकि सरकारी मुआवजा 12.60 लाख रुपए प्रति एकड़ तय हुआ था.

किसानों ने 'भूमि अधिग्रहण विरोधी संघर्ष समिति' का गठन कर अपनी ज़मीन के अधिग्रहण का विरोध किया था. उन्होंने पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय में अधिग्रहण के खिलाफ अपील की थी. लेकिन न्यायलय ने अपील खारिज कर दी. न्यायालय के फैसले में दिए गए तर्क पढ़ने लायक हैं. मैं उन्हें यहां नहीं दोहरा रहा हूं. न्यायालय ने यह भी गौर नहीं किया कि कुल अधिग्रहित 2006 एकड़ ज़मीन में से केवल 535 एकड़ शिक्षा संस्थानों के लिए तय की गई थी. बाकी ज़मीन कमर्शियल, इंस्टिट्यूशनल और रेजिडेंशियल उद्देश्यों के लिए थी. ज़ाहिर है, सरकार ब्रोकर की भूमिका में थी. न्यायालय यह नहीं देख पाया कि राज्य, शिक्षा के सौदागरों और रियल एस्टेट के खिलाड़ियों के गठजोड़ (नेक्सस) के चलते ज़मीन का बाज़ार और शिक्षा का बाज़ार मिल कर एक हो गए हैं.

1991 के बाद से ही राज्यों ने किसानों की ज़मीन का देशी-विदेशी निजी कंपनियों के लिए अधिग्रहण करना शुरू कर दिया था. लोग अपनी याचिका लेकर न्यायालयों में जाते. लेकिन

अक्सर सुनवाई से इंकार कर दिया जाता. अगर देश के सभी न्यायालयों के इस तरह के फैसलों की समीक्षा हो, तो यह पता चलेगा कि उनमें से ज्यादातर में निजी-हित (प्राइवेट इंटरेस्ट) को जन-हित (पब्लिक इंटरेस्ट) के रूप में वैधता प्रदान की गई है. इन फैसलों से यह भी स्पष्ट होता है कि विकास और शहरीकरण की परियोजनाओं की परिकल्पना और क्रियान्वयन में स्थानीय लोगों की भूमिका देश की न्यायपालिका स्वीकार नहीं करती. मानो वे बराबर के नागरिक और मनुष्य न होकर केवल रोबो हैं!

किसान अपनी मांग लेकर कांग्रेस एवं यूपीए की अध्यक्ष श्रीमती सोनिया गांधी से भी मिले थे, जिन्होंने यह कह कर हस्तक्षेप करने से इंकार कर दिया कि अधिग्रहित ज़मीन बंजर है. सभी जानते हैं कि सोनीपत-राई की ज़मीन ज़रखेज है, और यहां जबरदस्त खेती होती है. मुख्यमंत्री भूपेंद्र सिंह हुड्डा ने श्रीमती सोनिया गांधी को ज़मीन के बारे में जो बताया, उन्होंने मान लिया. यह भी गौरतलब है कि हरियाणा अथवा देश के शिक्षा एवं अकादमिक जगत से जुड़े किसी भी शिक्षाविद अथवा विद्वान की एजुकेशन सिटी की इस पूरी परियोजना में सहभागिता नहीं थी. जबकि इस परियोजना को दुनिया का सबसे बड़ा एजुकेशन हब प्रचारित किया गया था, जहां ऑक्सफ़ोर्ड और कैंब्रिज साक्षात् उतर आएंगे, जिनमें पढ़ने के लिए विदेशी छात्र दाखिले के लिए लाइन लगाएंगे. मजेदारी यह है कि किसी शिक्षाविद अथवा विद्वान ने एजुकेशन हब के निर्माण में उनकी अनदेखी पर सवाल भी नहीं उठाया.

यहां ऐतिहासिक गांव बडखालसा का जिक्र करना मुनासिब होगा. यह गांव बाकी गांवों के मुकाबले हाईवे के सबसे अधिक निकट है. इस गांव के लोगों ने भूमि अधिग्रहण विरोधी संघर्ष समिति के बैनर तले करीब 12 साल तक अधिग्रहण का विरोध करते हुए अपने गांव की 282 एकड़ ज़मीन का मुआवजा नहीं उठाया. बाद में मुआवज़े की रकम बढ़ने पर कुछ किसानों ने अपनी ज़मीन का मुआवजा स्वीकार कर लिया. अंततः सरकार से हुए समझौते के तहत इस गांव के किसानों को ज़मीन के बदले ज़मीन दी गई. समझौते के पीछे एक कारण यह भी बताया जाता है कि केएमपी-केजीपी एक्सप्रेसवेज के लिए बडखालसा गांव की 22 एकड़ ज़मीन की जरूरत थी, जिसे गांव वालों ने देना स्वीकार कर लिया था. लिहाज़ा, सरकार ने ज़मीन के बदले ज़मीन देने की किसानों की शर्त मान ली.

मैं अपनी बहन के गांव जाखोली और पतला जाते हुए सैंकड़ों बार राजीव गांधी एजुकेशन सिटी के लिए अधिग्रहित की गई ज़मीन से गुजरा हूं. मुझे एजुकेशन सिटी की आधारशिला रखे जाने के बाद हरियाणा शहरी विकास प्राधिकरण (हुडा) और प्राइवेट रियलटर्स के रंगीन सपने परोसने वाले विज्ञापनों की याद आती है. उन विज्ञापनों में जो बड़ी-बड़ी घोषणाएं की गई थीं, यहां वैसा कुछ भी नहीं हुआ है. यहां केवल 4-5 निजी विश्वविद्यालय काम कर रहे हैं. ओपी जिंदल ग्लोबल यूनिवर्सिटी एजुकेशन सिटी के कैंपस से अलग है. खाली पड़ी ज़मीन पर कुछ किसानों ने फिर से खेती करना शुरू कर दिया. उनका कहना है जब कुछ निर्माण होगा, तो खेती करना बंद कर देंगे. कुछ स्थानीय सयाने लोगों की नज़र में राजीव गांधी एजुकेशन सिटी ही नहीं, पूरे 'सोनीपत-कुंडली अर्बन काम्प्लेक्स प्लान' (एसकेयूसीपी) की कल्पना और कार्यान्वयन ही गलत था.

खुद हरियाणा सरकार ने एक बार फिर 'भारत के मिलेनियम सिटी' गुड़गांव का रुख किया है, जहां 1080 एकड़ में 'ग्लोबल सिटी एंड लोजिस्टिक्स हब' बनाने के लिए मुख्यमंत्री और उपमुख्यमंत्री अक्तूबर में संयुक्त अरब अमीरात (यूएइ) स्थित निवेशकों और अंतर्राष्ट्रीय बिल्डरों को न्यौता देने के लिए दुबई गए थे. वहां रोड शो करते हुए मुख्यमंत्री ने कुछ अन्य परियोजनाओं - 'इंटीग्रेटेड मल्टी-मॉडल लोजिस्टिक्स हब', महेंद्रगढ़, 'इंटीग्रेटेड एविएशन हब', 'इंटीग्रेटेड मैन्युफैक्चरिंग क्लस्टर', हिसार, 'इलेक्ट्रॉनिक्स मैन्युफैक्चरिंग क्लस्टर' सोहना - की भी मार्केटिंग की. ज़ाहिर है, सरकार यह सब नहीं करेगी. वह किसानों की ज़मीन अधिग्रहित करके निजी कंपनियों को देगी. अलग-अलग सरकारों के शासन में 'विकास' का यह 'बिजनेस' चलते रहना जरूरी है, ताकि पार्टियों और नेताओं के पास कारपोरेट राजनीति चलाने के लिए अकूत धन आता रहे.

महानगरों/नगरों/कस्बों के पास के खेती-बागवानी से जुड़े ग्रामीण इलाकों के शहरीकरण के खब्त ने सब उलट-पुलट करके रख दिया है; भूगोल को ही विकृत नहीं किया जा रहा है, सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधों की सहजता को भी नष्ट कर दिया गया है. सबसे घातक यह है कि समाज, राष्ट्र और दुनिया की बेहतर रचना के लिए शिक्षा जैसे जरूरी और संवेदनशील विषय को बाज़ार की वस्तु बना दिया है. इस गंभीर संकट पर बुद्धिजीवियों का ही ध्यान नहीं है, तो नेताओं और कारपोरेट लॉबी को भला क्या चिंता होगी? सेलेब्रेटी विद्वानों के नाम और फोटो निजी विश्वविद्यालयों की वेबसाइटों और ब्रोशर्स में देखने को मिलते हैं, तो सिवाय अफसोस के कुछ नहीं किया जा सकता. यह सोच कर अफ़सोस गहरा हो जाता है कि देश और दुनिया से

फासीवाद हटाने से लेकर पर्यावरण-विनाश का संकट दूर करने तक का कार्य-भार भी इन्हीं के पास है!

अब यह मुद्दा भारत की बौद्धिक बहसों के केंद्र में नहीं है कि देश के सभी नौनिहालों और नौजवानों को पढ़ने के लिए उनकी पसंद का पाठ्यक्रम और संस्थान उपलब्ध कराना राज्य की जिम्मेदारी है. जैसे-जैसे राज्य और केंद्रीय विश्वविद्यालय बर्बाद होते जाएंगे, समाजशास्त्र और मानविकी के विषय पूरी तरह निजी विश्वविद्यालयों के हवाले होते जाएंगे. जैसा कि ऊपर कहा गया है, प्राकृतिक विज्ञानों की जरूरत 'नए भारत' को नहीं है. 'विकसित' और 'विश्व-स्तरीय' होने के अंध-विश्वास ने वैज्ञानिक सोच के लिए जगह छोड़ी ही नहीं है. मानवीय परस्परता और संवेदना को सांप्रदायिकता ने ग्रस लिया है.

इस माहौल में इंफ्रास्ट्रक्चर और उपभोक्ता वस्तुओं की तरह बेशुमार विज्ञापन ही विश्व-स्तरीय शिक्षा मान ली जाए तो क्या आश्चर्य है? और उसमें ऑक्सफ़ोर्ड और कैंब्रिज जैसे शिक्षा संस्थानों को भी खींच लिया जाये! जिन स्वतंत्रता सेनानियों और विचारकों, जिनमें कई गंभीर शिक्षाविद भी थे, ने कभी सोचा भी नहीं होगा कि भारत में शिक्षा का बाज़ार और बाज़ार के लिए शिक्षा का ऐसा बोलबाला होगा. जल्दी ही यह मंजर देखने को मिल सकता है कि निजी विश्वविद्यालयों में उन महान विभूतियों के नाम पर बनाए गए कक्ष, सभागार, चेयर, पाठ्यक्रम आदि स्थापित किए जाएं, ताकि उन्हें नवउदारवादी बाजारवाद के हमाम में खींच लिया जाए. कतिपय निजी विश्वविद्यालयों ने यह काम शुरू भी कर दिया है. इस कर्तव्य-भार को सम्हालने के लिए विद्वानों की कमी नहीं रहेगी.

4

मेरा शुरू मानना रहा है कि स्वतंत्रता संघर्ष के मूल्यों, संविधान, समाज और भारतीय राष्ट्र पर अश्लील उदारीकरण-निजीकरण के चौतरफा हमले को शिक्षा का मोर्चा पकड़ कर जीता जा सकता है. इस संदर्भ में मैं यहां अखिल भारतीय शिक्षा अधिकार मंच (अभाशियम) का विशेष तौर पर जिक्र करना चाहूंगा. अभाशियम के तत्वाधान में इस मोर्चे पर सतत संघर्ष चल रहा है. अभाशियम राज्य द्वारा सबको समान और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के पक्ष में, और शिक्षा के बाज़ारीकरण के खिलाफ निरंतर संघर्षरत है. प्रोफेसर अनिल सदगोपाल, प्रोफेसर केएम श्रीमाली, प्रोफेसर जी हरगोपाल, प्रोफेसर वसी अहमद, प्रोफेसर जगमोहन सिंह, प्रोफेसर मधु प्रसाद, प्रोफेसर विकास गुप्ता, प्रोफेसर प्रसाद वी, प्रोफेसर चक्रधर राव, श्री गंगाधर जैसे शिक्षकों और शिक्षाविदों ने पूरी संलग्नता और स्पष्टता के साथ इस संघर्ष को आगे बढ़ाया है.

साथी रमेश पटनायक का कैरियर शिक्षा के साथ जुड़ा नहीं रहा है, लेकिन अभाशियम के गठन से लेकर अभी तक के संघर्ष की उनके बिना कल्पना नहीं की जा सकती. इस संघर्ष से जुड़े कई साथी अब हमारे बीच नहीं हैं. उनमें साथी सुनील, प्रोफेसर स्वाति, भाई वैद्य का इस संघर्ष में यादगार योगदान रहा है. पूरे देश में बहुत से सरोकारधर्मी नागरिक अभाशियम के संघर्ष के साथ जुड़े हुए हैं. दिल्ली स्थित लोक शिक्षक मंच भी शिक्षा, विशेषकर स्कूली शिक्षा, के सवालों और समस्याओं पर गंभीरता से विचार करने वाली संस्था है. कई छोटी सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट पार्टियों और उनकी छात्र इकाइयों की भी शिक्षा पर बाजारवाद-उपभोक्तावाद के हमले का वैचारिक मुकाबला करने में महत्वपूर्ण भूमिका है. लेकिन स्थापित छात्र संगठनों, राजनीतिक दलों, नागरिक समाज एक्टिविस्टों, विद्वानों, पत्रकारों का पूरा साथ इन सब प्रयासों को नहीं मिलता. आशा की जानी चाहिए कि सभी संघर्षशील नागरिक एकबारगी शिक्षा के सवाल पर एकजुट होकर उदारीकरण-निजीकरण के शिकंजे को समग्रता में निर्णायक चुनौती देंगे, तो आगे की राह आसान होगी.

(*समाजवादी आन्दोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के पूर्व फेलो हैं*)